

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 3 अध्याय 18: दिव्य वराह का हिरण्याक्ष से सामना

13 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



मैत्रेय विदुर को अपनी कथा आगे सुनाते हैं: कैसे दानव हिरण्याक्ष, वरुण की सलाह की उपेक्षा करके तथा नारद द्वारा दिखाए गए मार्ग से समुद्र की गहराइयों में जाकर, वहाँ दिव्य वराह को पाता है जो उद्धारित पृथ्वी को अपने दाँतों पर धारण किए हुए हैं — तथा कैसे तिरस्कार से तिरस्कार तथा गदा से गदा का सामना होता है, यहाँ तक कि स्वयं ब्रह्मा वहाँ पहुँचते हैं, इस चिन्ता में कि भगवान् सन्ध्या की भयावह घड़ी आने से पहले ही यह द्वन्द्व समाप्त कर दें।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्जम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। सप्तदश अध्याय का समापन समुद्र के तल पर, जल के स्वामी वरुण की सभा में हुआ था — हिरण्याक्ष, सातों समुद्रों में दिव्य वराह की गन्ध का पीछा करते हुए, वहाँ गदा हाथ में लिए पहुँचे तथा उपहासपूर्वक युद्ध की माँग की। वरुण, अब ऐसे द्वन्द्वों के लिए अत्यन्त वृद्ध, उन्हें एक ऐसी शालीनता के साथ अस्वीकार करते हैं जो स्वयं में एक शिक्षा है: वे दानव को बताते हैं कि सम्पूर्ण सृष्टि में केवल एक ही प्रतिद्वन्द्वी उनकी चुनौती का उत्तर देने योग्य है — स्वयं परम पुरुष भगवान् विष्णु — तथा उन्हें खोजना उस अभिमानी दैत्य को, अन्ततः, उसके अहंकार के अन्त तक, युद्ध-भूमि में पराजित होकर, ले आएगा। अष्टादश अध्याय ठीक वहीं से आरम्भ होता है, जब मैत्रेय विदुर को बताते हैं कि हिरण्याक्ष ने उस सलाह का क्या किया: उन्होंने इसे विनम्रता के मार्गदर्शन के रूप में पूर्णतः उपेक्षित कर दिया, यद्यपि उन्होंने इसकी विषय-वस्तु को उत्सुकतापूर्वक अपना लिया। ऋषि नारद से ठीक-ठीक जानकर कि भगवान् कहाँ पाए जा सकते हैं, वे उसी सामने की ओर दौड़ पड़े जिससे वरुण ने अपने ढंग से उन्हें बचाने का प्रयास किया था।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 3 (तृतीय स्कन्ध)
- अध्याय: 18 (अष्टादश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: दिव्य वराह का हिरण्याक्ष से सामना
- मुख्य वक्ता: ऋषि मैत्रेय, विदुर को अपनी निरन्तर कथा सुनाते हुए — यह सम्पूर्ण कथा श्रीशुकदेव गोस्वामी द्वारा राजा परीक्षित को, तथा सूत गोस्वामी द्वारा ऋषि शौनक एवं नैमिषारण्य की सभा को सुनाई गई
- मुख्य श्रोता: विदुर
- मुख्य स्थल: ब्रह्माण्ड-सागर की गहराइयाँ, जहाँ दिव्य वराह (वराह-अवतार) उद्धारित पृथ्वी को अपने दाँतों पर धारण किए हुए हैं; भगवान् तथा दानव हिरण्याक्ष के बीच सामना तथा प्रहारों का आरम्भिक आदान-प्रदान, जिसे ब्रह्मा तथा ऋषियों के एक विशाल समूह ने देखा
- मुख्य विषय: भगवान् का पीछा करते हुए हिरण्याक्ष का समुद्र में प्रवेश; उनके तिरस्कारपूर्ण ताने तथा चुनौती; भगवान् का अपना शान्त, उपहासपूर्ण उत्तर; दोनों के बीच गदा-प्रहारों का प्रथम आदान-प्रदान; ब्रह्मा का आगमन तथा उनकी तत्काल प्रार्थना कि सन्ध्या की आसन्न, विश्व-संकटकारी घड़ी आने से पहले ही भगवान् दानव का वध कर दें
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 3, अध्याय 18, श्लोक 1–28
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

हिरण्याक्ष को समुद्र की गहराई में वराह मिलते हैं

मैत्रेय हिरण्याक्ष द्वारा वरुण की सलाह की उपेक्षा पर नहीं रुकते; वे तुरन्त इस पर आते हैं कि दानव ने इसके स्थान पर क्या किया। अभिमानी तथा दम्भी, वृद्ध देवता के शब्दों की तनिक भी परवाह न करते हुए, हिरण्याक्ष नारद की ओर मुड़ते हैं, उनसे ठीक-ठीक जानते हैं कि श्रीहरि कहाँ मिल सकते हैं, तथा उस तात्कालिकता के साथ समुद्र की गहराई में प्रवेश करते हैं जिसे पाठ सावधानी से नोट करता है — यह कोई निरर्थक जिज्ञासा नहीं थी अपितु एक दैत्य ऐसी हत्या के लिए बढ़ रहा था जिसे वह पहले से ही अपनी मान चुका था। वहाँ उन्हें जो मिला वह था सर्व-

विजयी दिव्य वराह, उद्धारित पृथ्वी अभी भी उनके दाँतों की नोकों पर सन्तुलित, उनकी लालिमायुक्त आँखें मानो अपनी दृष्टि मात्र से ही दानव को उसके तेज से वंचित कर रही हों। हिरण्याक्ष की पहली प्रतिक्रिया भय नहीं अपितु उपहास है — वे खुलकर हँसते हैं, भगवान् को एक जलचर पशु मात्र कहकर सम्बोधित करते हैं, उस द्वन्द्व के अयोग्य जिसकी माँग करने के लिए उन्होंने एक सम्पूर्ण समुद्र पार किया है।

मैत्रेय उवाच ।

तदेवमाकर्ण्य जलेशभाषितं महामनास्तद्विगणय्य दुर्मदः ।

हरेर्विदित्वा गतिमङ्ग नारदाद्रसातलं निर्विविशे त्वरान्वितः ॥ १ ॥

maitreya uvāca tad evam ākarṇya jaleśa-bhāṣitaṁ mahā-manās tad vigaṇayya durmadaḥ harer viditvā gatim aṅga nāradād rasātalaṁ nirviviśe tvarānvitaḥ

अर्थ: मैत्रेय ने कहा: जल के स्वामी वरुण के इन वचनों को सुनकर, उस दम्भी दानव ने उनकी तनिक भी परवाह न की; तथा नारद से श्रीहरि का पता जानकर, वह शीघ्रतापूर्वक रसातल (समुद्र) की गहराई में प्रविष्ट हुआ। (स्कन्ध 3, अध्याय 18, श्लोक 1)



वरुण की सलाह की उपेक्षा करते हुए भी उनके निर्देश के लिए उत्सुक, हिरण्याक्ष नारद से जानते हैं कि भगवान् कहाँ मिल सकते हैं तथा समुद्र की गहराई में दौड़ पड़ते हैं, जहाँ वे दिव्य वराह को अपने दाँतों पर पृथ्वी धारण किए हुए पाते हैं तथा उन्हें एक साधारण जलचर पशु कहकर उपहास करते हैं (श्लोक 1-2)।

दानव की चुनौती तथा उसके तानेभरे वचन

आगे जो आता है वह तिरस्कार का एक सैलाब है, तथा मैत्रेय इसे संक्षेप में नहीं अपितु विस्तार से सुनाते हैं, मानो दानव की डींग की मात्र मात्रा ही स्वयं इस शिक्षा का एक भाग हो। हिरण्याक्ष भगवान् को तुरन्त पृथ्वी छोड़ने का आदेश देते हैं, उन्हें मूर्ख तथा “वराह-वेश में छिपा एक नीच देवता” कहते हुए, यह आग्रह करते हुए कि ब्रह्माण्ड के रचयिता ने पृथ्वी रसातल के निवासियों को सौंपी है तथा कोई भी — विशेषतः यह पशु-रूपी घुसपैठिया — उसे उनकी आँखों के सामने से बिना हानि पहुँचाए नहीं ले जा सकता। वे और आगे बढ़ते हैं, भगवान् पर कायरता को रणनीति के रूप में प्रस्तुत करने का आरोप लगाते हुए: कि देवताओं ने उन्हें असुरों को छल से नष्ट करने के स्पष्ट उद्देश्य से पाला है, कि उनका

एकमात्र वास्तविक बल योगमाया, अर्थात् छल की शक्ति है, तथा यह कि अभी उनका वध करके वे अन्ततः अपने कुटुम्बियों के आँसू पोंछ देंगे। उनकी अन्तिम धमकी लगभग हिंसा में प्रफुल्लित प्रतीत होती है — वे कहते हैं, जब उनकी गदा से भगवान् की खोपड़ी चूर-चूर होगी, तब उन पर निर्भर ऋषि तथा देवता जड़ों से उखड़े वृक्षों की भाँति मुरझा जाएँगे।

धमकियों तथा गदा-प्रहारों के शोर के नीचे एक गहरा कारण छिपा है, जिसे चूकना सरल है, कि भगवान् एक ऐसे शत्रु से क्यों जूझते हैं जिसे वे मात्र एक दृष्टि से पराजित कर सकते थे। जब हिरण्याक्ष डींग मारते हैं कि भगवान् का वध करके वे अन्ततः अपने कुटुम्बियों के आँसू पोंछ देंगे, तो संस्कृत में दानव के मुख में रखा गया वह शब्द जो इस “वध” के लिए प्रयुक्त हुआ है, एक दूसरा तथा अधिक गहन अर्थ भी रखता है: मुक्त करना। जो दानव की दृष्टि से मृत्यु तक की लड़ाई प्रतीत होती है, वह भगवान् की दृष्टि से कृपा का एक शान्त अवसर है — क्योंकि भगवान् के अपने हाथों दी गई मृत्यु विनाश में नहीं अपितु जन्म-मृत्यु के उसी बन्धन से मुक्ति में समाप्त होती है जो साधारण जीवों को चक्र में बाँधे रखता है। हिरण्याक्ष भगवान् का जीवन समाप्त करने के लिए लड़ रहे हैं; भगवान्, बिना जल्दबाज़ी के प्रत्येक अपमान को सहन करते हुए, वस्तुतः पहले से ही दानव के बन्धन को समाप्त करने की तैयारी कर रहे हैं। यहाँ तक कि शत्रुता भी, जब उसका विषय स्वयं परम पुरुष हो, शत्रु के लिए अन्त नहीं अपितु एक द्वार बन जाती है (श्लोक 4)।

इस सबके बीच भगवान् उसी भाव में उत्तर नहीं देते, अभी नहीं। मैत्रेय की भाषा यहाँ उल्लेखनीय है: दानव के अपशब्दों को भगवान् को बाणों की भाँति बीँधते हुए वर्णित किया गया है, तथा उन्हें उस पीड़ा को सहन करते हुए बताया गया है — इसलिए नहीं कि वे किसी अपमान मात्र से वास्तव में आहत हैं, अपितु इसलिए कि उनका ध्यान पूर्णतः किसी और वस्तु पर केन्द्रित है: पृथ्वी, अभी भी उनके दाँतों पर विश्राम करती हुई, दानव के क्रोध से स्पष्ट रूप से भयभीत। केवल एक बार जल से सुरक्षित बाहर निकल आने पर, अपनी संगिनी को घड़ियाल से बचाने वाले हाथी की शान्त दृढ़ता के साथ आगे बढ़ते हुए, यह सामना ठीक-ठीक आरम्भ होता है। हिरण्याक्ष, स्वयं स्वर्णिम बाल तथा भयंकर दाँतों वाले, भगवान् के जल से उठते समय उनका पीछा करते हैं, गड़गड़ाहट की भाँति गरजते हुए तथा उन्हें और उपहासित करते हुए यह मानकर कि वे पलायन कर रहे हैं — यद्यपि पाठ हमें स्पष्ट रूप से दिखाता है कि यह पलायन नहीं, संयम है।



हिरण्याक्ष तिरस्कारपूर्ण तानों का एक सैलाब छोड़ते हैं, भगवान् को कायर तथा धोखेबाज़ कहते हुए तथा उनकी खोपड़ी चूर-चूर करने की धमकी देते हुए; भगवान् मौन में इस अपमान को सहन करते हैं, उनका ध्यान केवल भयभीत पृथ्वी को सुरक्षित रूप से जल से बाहर लाने पर केन्द्रित है (श्लोक 3-7)।

पृथ्वी की स्थापना, तथा भगवान् का अपना उत्तर

अध्याय के इस आरम्भिक भाग का मोड़ शान्तिपूर्वक आता है, दानव के समस्त शोर के बीच लगभग प्रासंगिक रूप से। भगवान् पृथ्वी को धीरे से जल की सतह पर, अपनी ही दृष्टि के भीतर, स्थापित करते हैं, तथा उन्हें अपनी शक्ति का एक अंश प्रदान करते हैं ताकि वे स्वयं को वहाँ धारण कर सकें — एक छोटा, कोमल कार्य जो एक क्रोधित दानव के निकट आने के बीच भी सम्पन्न होता है, तथा पाठ यह भी बताता है कि यह उस समय होता है जब ब्रह्मा दूर से उनकी स्तुति कर रहे हैं तथा देवता मूक श्रद्धांजलि में फूल बरसा रहे हैं। पृथ्वी सुरक्षित हो जाने के पश्चात् ही भगवान् अपना सम्पूर्ण ध्यान हिरण्याक्ष की ओर मोड़ते हैं। जो आगे आता है वह क्रोध नहीं अपितु किसी हास्यमय, भयंकर शान्ति के निकट कुछ है — मैत्रेय कहते हैं कि भगवान् ने “भयंकर क्रोध प्रदर्शित” किया, फिर भी वे “हँसते हुए” उस दानव से बात कर रहे थे जो अब उनके निकट आ चुका था, अपनी गदा से सज्जित तथा अपने विचित्र स्वर्ण-कवच से आवृत, जिसने सम्पूर्ण सामने के दौरान केवल शब्दों से ही भगवान् को गहराई तक घायल किया था।

परानुषक्तं तपनीयोपकल्पं महागदं काञ्चनचित्रदंशम् ।

मर्माण्यभीक्ष्णं प्रतुदन्तं दुरुक्तैः प्रचण्डमन्युः प्रहसंस्तं बभाषे ॥ ९ ॥

*parānuṣaktaṁ tapanīyopakalpaṁ mahā-gadaṁ kāñcana-citra-danśam marmāṇy abhīkṣṇaṁ
pratudentaṁ duruktaḥ pracaṇḍa-manyuḥ prahasāṁs taṁ babhāṣe*

अर्थ: [मैत्रेय वर्णन करते हैं कि] भगवान्, जिनका हृदय दानव के अपशब्दों से बार-बार बीँधा गया था, अब उसके निकट खड़े, अपनी विशाल गदा से सज्जित तथा स्वर्ण-आभूषणों एवं विचित्र स्वर्ण-कवच से सुशोभित उस दानव को, हँसते हुए, यद्यपि भयंकर क्रोध प्रदर्शित करते हुए, सम्बोधित करने लगे। (स्कन्ध 3, अध्याय 18, श्लोक 9)

भगवान् का अपना उत्तर, जब आता है, ताने का ताने से मिलान करता है, परन्तु एक ऐसे आत्म-विनोदी व्यंग्य के साथ जो इस भाव को और गहरा करता है कि वे इस क्षण पर पूर्णतः नियन्त्रण रखते हैं। वे स्वयं को तथा अपनी प्रकृति को वन के साधारण पशु मात्र कहते हैं, हिरण्याक्ष जैसे ग्राम-कुत्तों की खोज में विचरण करते हुए; वे स्पष्टतः यह भी नोट करते हैं कि मृत्यु की डोरी से पहले ही बँधे हुए वीर — जैसा प्रत्येक मरणशील तथा दानव अन्ततः है — ऐसे आत्म-प्रशंसा पर ध्यान नहीं देते। वे स्पष्ट व्यंग्य के साथ यह स्वीकार करते हैं कि उन्होंने रसातल के निवासियों का “भार चुरा लिया” है तथा अब उसकी गदा से भयभीत, लज्जा को हवा में उड़ाते हुए खड़े हैं — फिर भी, वे कहते हैं, इच्छा हो या न हो, युद्ध-भूमि में डटे रहना ही होगा; क्योंकि इतने शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी से शत्रुता उत्पन्न करके, अब भागने के लिए कहाँ जाया जाए? उनके अन्तिम शब्द लगभग एक औपचारिक चुनौती हैं: “पैदल सैनिकों के अगुवाओं का अगुवा” तत्काल कदम उठाकर उन्हें परास्त करे, सम्पूर्ण झिझक त्यागकर, क्योंकि जो अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करता, वह सम्मानीय जनों की सभा में स्थान पाने योग्य नहीं है।

श्रीभगवानुवाच ।

सत्यं वयं भो वनगोचरा मृगा युष्मद्विधान्मृगये ग्रामसिंहान् ।

न मृत्युपाशैः प्रतिमुक्तस्य वीरा विकत्थनं तव गृह्णन्त्यभद्र ॥ १० ॥

*śrī-bhagavān uvāca satyaṁ vayaṁ bho vana-gocarā mṛgā yuṣmad-vidhān mṛgaye grāma-simhān
na mṛtyu-pāśaiḥ pratimuktasya vīrā vikatthanaṁ tava gṛhṇanty abhadra*

अर्थ: भगवान् ने कहा: यह सत्य है, हम तो वन के पशु मात्र हैं, तुम्हारे जैसे ग्राम में विचरण करने वाले कुत्तों की खोज में यहाँ भटक रहे हैं। मृत्यु की डोरी से पहले ही बँधे हुए वीर, हे अभागे, तुम्हारी निरर्थक डींग की तनिक भी परवाह नहीं करते। (स्कन्ध 3, अध्याय 18, श्लोक 10)



हिरण्याक्ष के निकट आते ही, भगवान् उद्धारित पृथ्वी को कोमलतापूर्वक जल की सतह पर स्थापित करते हैं तथा उन्हें वहाँ स्वयं को धारण करने की शक्ति प्रदान करते हैं, जबकि ब्रह्मा दूर से उनकी स्तुति करते हैं; तभी भगवान् दानव के तानों का अपना हास्यमय, व्यंग्यपूर्ण उत्तर देने की ओर मुड़ते हैं (श्लोक 8-12)।

द्वन्द्व आरम्भ होता है

भगवान् के उपहासपूर्ण उत्तर से उकसाए जाकर, संयम से परे, हिरण्याक्ष का क्रोध पूर्णतः उबल पड़ता है — मैत्रेय उनकी तुलना एक ऐसे सर्प से करते हैं जिसके साथ लापरवाही से खेला जा रहा हो, क्रोध से समस्त इन्द्रियों के काँपते हुए फुफकारते हुए। वे भगवान् पर टूट पड़ते हैं तथा अपनी गदा से प्रथम प्रहार करते हैं, ठीक दिव्य वक्षस्थल पर लक्ष्य करते हुए। भगवान्, अविचलित, बस थोड़ा-सा एक ओर हट जाते हैं, उस प्रहार को उसी सहजतापूर्ण गति से टाल देते हैं जिसकी तुलना मैत्रेय एक सिद्ध योगी द्वारा मृत्यु को टालने से करते हैं — एक ऐसी उपमा जो शान्तिपूर्वक श्रोता को स्मरण कराती है कि इस सामने में वास्तव में क्या दाँव पर है, तथा किसके लिए। यहाँ से द्वन्द्व वास्तव में आरम्भ होता है: भगवान् दानव से मिलने के लिए दौड़ते हैं, जो पुनः अपनी गदा उठाता है तथा क्रोध में अपने होंठ चबाते हुए इसे बार-बार घुमाता है; भगवान् की अपनी गदा दानव की दाहिनी भौंह पर लगती है, परन्तु इस प्रकार के युद्ध में कुशल हिरण्याक्ष उसे अपनी ही गदा से रोक लेते हैं। मैत्रेय की कथा यहाँ वास्तविक युद्ध की लय में स्थिर हो जाती है — हर्याक्ष, जैसा वे दानव को एक विशेषण से पुकारते हैं, तथा श्रीहरि अपनी विशाल गदाओं से एक-दूसरे पर आघात करते हैं, प्रत्येक अपनी ही विजय की खोज में, यहाँ तक कि दोनों योद्धाओं के शरीर पर एक-दूसरे की नुकीली गदा से घाव दिखाई देने लगते हैं तथा अपने ही शरीर पर रक्त की गन्ध से उनका क्रोध और भी बढ़ जाता है। मैत्रेय की सम्पूर्ण दृश्य के लिए उपमा जान-बूझकर सांसारिक तथा अनाडम्बरपूर्ण है: एक गाय के लिए युद्धरत दो साँड़ों की भाँति, प्रत्येक अपनी सम्पूर्ण शक्ति से लाभ की खोज में विविध प्रकार से पैतरे बदलता हुआ।

यह ध्यान देने योग्य है कि यह वर्णन वास्तव में कितना संयमित है, यह देखते हुए कि यह क्या हो सकता था। श्लोक हमें गति, ध्वनि तथा परिणाम प्रदान करते हैं — प्रहार दिए तथा लौटाए गए, चोटें सहन की गईं, क्रोध बढ़ता गया — बिना किसी रक्तपात अथवा तमाशे पर अपने आप के लिए रुके। सम्पूर्ण बल इच्छाशक्ति के संघर्ष पर उतना ही रहता है जितना शस्त्र-संघर्ष पर: एक अभिमानी दानव जो अपनी अजेयता के

प्रति आश्चस्त है, पहली बार ऐसी किसी वस्तु से मिल रहा है जो उसके बल अथवा उसकी डींग से सरलतापूर्वक विस्मित नहीं होगी।



भगवान् के उपहासपूर्ण उत्तर से संयम से परे क्रोधित होकर, हिरण्याक्ष आगे बढ़कर प्रथम प्रहार करते हैं; भगवान् उसे एक सिद्ध योगी की भाँति मृत्यु को टालने की सहजता से टाल देते हैं, तथा दोनों एक बढ़ते हुए, कठिन द्वन्द्व में गदा-प्रहार का आदान-प्रदान करते हैं (श्लोक 13-19)।

ब्रह्मा पहुँचते हैं, संसार के लिए चिन्तित

इस बिन्दु पर दृश्य विस्तृत हो जाता है। स्वयं ब्रह्मा, ब्रह्माण्ड के रचयिता, मरीचि आदि ऋषियों के एक विशाल समूह से घिरे हुए, विशेष रूप से दिति-पुत्र हिरण्याक्ष तथा उस परम पुरुष के बीच के द्वन्द्व को देखने के लिए वहाँ पहुँचते हैं जिन्होंने अपनी माया से वराह का रूप धारण किया है — एक ऐसा रूप, मैत्रेय हमें स्मरण कराते हैं, जो अपने ही शरीर पर वैदिक परम्परा के विभिन्न यज्ञों का प्रतिनिधित्व करता है। ब्रह्मा जो देखते हैं वह उन्हें चिन्तित करता है: हिरण्याक्ष पूर्ण पुरुषार्थ के साथ, भय से पूर्णतः रहित होकर युद्ध कर रहे हैं, भगवान् के प्रत्येक प्रहार को लौटाते हुए तथा एक ऐसा अजेय पराक्रम प्रदर्शित करते हुए जिसे केवल अत्यधिक कहा जा सकता है। यही दृश्य — भगवान् की अन्तिम विजय पर सन्देह नहीं, अपितु इस बात की चिन्ता कि यह द्वन्द्व अब कब तक चलने दिया जाए — ब्रह्मा को स्वयं भगवान् नारायण को सीधे सम्बोधित करने के लिए प्रेरित करता है।

दैत्यस्य यज्ञावयवस्य मायागृहीतवाराहतनोर्महात्मनः ।

कौरव्य मह्यां द्विषतोर्विमर्दनं दिदृक्षुरागादृषिभिर्वृतः स्वराट् ॥ २० ॥

daityasya yajñāvayavasya māyā-gṛhīta-vārāha-tanor mahātmanaḥ kauravya mahyāṁ dviṣator vimardanaṁ didṛkṣur āgād ṛṣibhir vṛtaḥ svarāṭ

अर्थ: हे कुरुवंशी विदुर, स्वयं-सिद्ध प्रभु ब्रह्मा, ऋषियों से घिरे हुए, पृथ्वी के लिए दानव तथा उस महान् आत्मा के बीच के भीषण द्वन्द्व को देखने की उत्सुकता से वहाँ पहुँचे, जिन्होंने अपनी ही दिव्य शक्ति से यज्ञ-स्वरूप वराह का रूप धारण किया था। (स्कन्ध 3, अध्याय 18, श्लोक 20)

ब्रह्मा का वचन, जो अध्याय का समापन करता है, आदेश से कम तथा एक तत्काल, लगभग व्याकुल प्रार्थना से अधिक है — सृष्टि के रचयिता उसके पालनकर्ता से किसी समकक्ष के रूप में निर्देश देते हुए नहीं अपितु समस्त लोकों के एक समर्पित हितैषी के रूप में उनकी रक्षा के लिए याचना करते हुए बोल रहे हैं। वे भगवान् को स्मरण कराते हैं कि यह दानव, स्वयं ब्रह्मा से वरदान प्राप्त करके, अब एक निरन्तर सङ्कट मात्र बन गया है: जो प्राणी सर्वदा आपकी शरण में रहते हैं — देवगण, ब्राह्मण, गौएँ तथा अन्य निर्दोष जीव — उन सब पर अपराध, भय तथा हानि थोपते हुए, तथा — कहीं भी उसका मुकाबला करने वाला कोई प्रतिद्वन्द्वी न पाकर — काँटे की भाँति लोकों में भटकते हुए। ब्रह्मा की सलाह यह नहीं है कि खेल के लिए भी इस द्वन्द्व को दीर्घ किया जाए: वे कहते हैं, उसके साथ मत खेलिए, जैसे कोई बालक पहले से ही क्रोधित सर्प के साथ खेलता है। इस पापी दानव का वध कीजिए, वे आग्रह करते हैं, अपनी ही माया की अध्यक्षता करते हुए, इससे पहले कि दानव उस घड़ी के आगमन के साथ और भी भयंकर हो जाए जो उसके अनुकूल है — सन्ध्या की वह भयावह, विश्व-संकटकारी घड़ी जो तेज़ी से निकट आ रही है। वे व्यावहारिक तात्कालिकता का एक ऐसा स्वर भी जोड़ते हैं जो इतने विशाल व्यक्तित्व के लिए लगभग स्पर्शपूर्ण मानवीय है: अभिजित नामक शुभ काल, जो विजय के लिए इतना उपयुक्त है, मध्याह्न में आरम्भ हुआ था तथा अब लगभग समाप्त हो चुका है; अतः, अपने सभी मित्रों की ओर से, ब्रह्मा प्रार्थना करते हैं कि इस भयंकर शत्रु का शीघ्र निपटारा किया जाए। उनके अन्तिम शब्द सम्पूर्ण सामने को, पूर्वदृष्टि से, एक प्रकार की कृपा के रूप में प्रस्तुत करते हैं जो पहले ही प्रदान की जा चुकी है: यह दानव, तीनों लोकों के सौभाग्य से, स्वेच्छा से ही अपनी उस मृत्यु के पास आ गया है जो सदैव उसके लिए नियत थी। अब भगवान् अपना पराक्रम प्रदर्शित करें, इसे न्यायपूर्ण युद्ध में मार डालें, तथा लोकों को पुनः शान्ति में स्थापित करें।

ब्रह्मोवाच ।

एष ते देव देवानामङ्घ्रिमूलमुपेयुषाम् । विप्राणां सौरभेयीणां भूतानामप्यनागसाम् ॥ २२ ॥

आगस्कृद्भयकृद्दुष्कृदस्मद्राद्धवरोऽसुरः । अन्वेषन्नप्रतिरथो लोकानटति कण्टकः ॥ २३ ॥

*brahmovāca eṣa te deva devānām aṅghri-mūlam upeyuṣām viprāṇām saurabheyīṇām
bhūtānām apy anāgasām āgas-kṛd bhaya-kṛd duṣkṛd asmad-rāddha-varo 'surah anveṣann
apratiratho lokān aṭati kaṇṭakah*

अर्थ: ब्रह्मा ने कहा: हे प्रभु, यह दानव, मुझसे वरदान प्राप्त करके, एक काँटा बन गया है — आपके चरणों में शरण लेने वाले देवताओं, ब्राह्मणों, गायों तथा अन्य निर्दोष प्राणियों का अपराधी, भय-दाता तथा हानिकारक, तथा, कहीं भी कोई प्रतिद्वन्द्वी न पाकर, अब भी उसकी खोज में लोकों में भटक रहा है। (स्कन्ध 3, अध्याय 18, श्लोक 22-23)

दिष्ट्या त्वां विहितं मृत्युमयमासादितः स्वयम् ।

विक्रम्यैनं मृधे हत्वा लोकानाधेहि शर्मणि ॥ २८ ॥

*diṣṭyā tvām vihitam mṛtyum ayam āsāditaḥ svayam vikramyainam mṛdhe hatvā lokān ādhehi
śarmaṇi*

अर्थ: सौभाग्य से, यह दानव स्वयं आपके पास, जो उसकी नियत मृत्यु है, स्वेच्छा से आ पहुँचा है। अपना पराक्रम प्रदर्शित करते हुए, इसे इस द्वन्द्व में मार डालिए, तथा लोकों को शान्ति में स्थापित कीजिए। (स्कन्ध 3, अध्याय 18, श्लोक 28)



ब्रह्मा, ऋषियों के एक विशाल समूह से घिरे हुए, भीषण द्वन्द्व को देखने पहुँचते हैं तथा, दानव के इतने पराक्रमी तथा निर्भय सिद्ध होने से चिन्तित होकर, भगवान् से तत्काल प्रार्थना करते हैं कि सन्ध्या की आसन्न घड़ी आने से पहले ही हिरण्याक्ष का वध कर दें, तथा व्याकुल लोकों में पुनः शान्ति स्थापित करें (श्लोक 20-28)।

ब्रह्मा की इस प्रार्थना के साथ, अष्टादश अध्याय समाप्त होता है — इसका अपना समापन-पद्य इसे हिरण्याक्ष की मृत्यु की व्यापक कथा के एक भाग के रूप में वर्णित करता है, यद्यपि मृत्यु स्वयं अभी नहीं हुई है। दानव अभी भी खड़ा है। द्वन्द्व अभी भी चल रहा है। अष्टादश अध्याय हमें सम्पूर्णता में यह सामना प्रदान करता है: पीछा, दोनों ओर से ताने, पृथ्वी की सुरक्षित स्थापना, प्रहारों का प्रथम आदान-प्रदान, तथा अन्ततः ब्रह्मा तथा उनके ऋषि-समूह की व्याकुल, आशापूर्ण प्रतीक्षा, उनकी दृष्टि एक ऐसे युद्ध पर टिकी हुई जिसके परिणाम पर उन्हें पहले से ही विश्वास है परन्तु जिसके समय को, सन्ध्या के निकट आने के साथ, वे शीघ्र करना चाहे बिना नहीं रह पाते।

इस अध्याय की मुख्य शिक्षाएँ

1. उत्तेजना के सामने संयम स्वयं एक शक्ति है। भगवान् हिरण्याक्ष से निरन्तर आने वाले उपहास तथा अपमान के सैलाब को अपना धैर्य खोए बिना सहन करते हैं, दानव को उसी भाव में उत्तर देने से पहले पृथ्वी की सुरक्षा पर ध्यान देते हुए। श्रीमद्भागवत यह छिपाता नहीं कि उन शब्दों ने भगवान् को स्पर्श नहीं किया — यह स्पष्ट कहता है कि वे बाणों की भाँति उन्हें बँध गए — फिर भी यह वास्तविक पीड़ा भी उन्हें उनकी वास्तविक प्राथमिकता से विचलित नहीं करती, जो आत्म-संयम का एक ऐसा आदर्श है जिसका अर्थ उत्तेजना अनुभव न करने का दिखावा करना कदापि नहीं है (श्लोक 3-9)।
2. भगवान् की क्रीड़ा में भी प्रयोजन निहित होता है। ब्रह्मा जिसे युद्ध के रूप में देखते हैं, वह भगवान् की अपनी ओर से कभी सन्देह में नहीं है; फिर भी वे पूर्णतः संलग्न होते हैं, प्रहार के लिए प्रहार, यह दिखाते हुए कि दिव्य क्रीड़ा (लीला) का अर्थ लापरवाही नहीं है। दानव को उनका अपना उत्तर (श्लोक 10) इस बात को स्पष्ट कर देता है: जो मृत्यु की पहुँच से पहले ही परे है, उसे मृत्यु से बँधे हुए एक डींगमार के सामने कुछ भी सिद्ध नहीं करना; अतः आगे का द्वन्द्व व्याकुलता से नहीं अपितु निश्चिन्त धैर्य से लड़ा जाता है — प्रतीत होने वाले विनोद में भी प्रत्येक कार्य लोकों की सुरक्षा की सेवा करता है (श्लोक 10-19)।

3. संयम से रहित असीमित शक्ति समस्त के लिए सङ्कट बन जाती है। हिरण्याक्ष का वरदान-दत्त बल, किसी भी संगत संयम से रहित, उन्हें केवल दुर्भावना के कारण नहीं अपितु किसी भी अंकुश के पूर्ण अभाव के कारण एक सङ्कट बना देता है — बिना संगत चरित्र के प्रदत्त शक्ति के विरुद्ध एक चेतावनी (श्लोक 3-5, 22-24)।

4. स्वयं ब्रह्माण्ड के रचयिता भी भगवान् से रक्षक के रूप में प्रार्थना करते हैं। ब्रह्मा की तत्काल प्रार्थना — जो स्वयं उसी सत्ता से आती है जिसने प्रथमतः हिरण्याक्ष को यह खतरनाक वरदान दिया था — यह दिखाती है कि संसार में मुक्त किए गए किसी सङ्कट का दायित्व उसके उद्गम तक सीमित नहीं रहता; यह सक्रिय रूप से उसके समाधान की खोज तक विस्तृत होता है। ब्रह्मा क्रोध से दण्ड की माँग नहीं करते अपितु इस दानव द्वारा त्रस्त निर्दोषों पर कृपा करते हुए शीघ्र कार्य की माँग करते हैं — यह एक ऐसा भेद है जिसे वे अपनी प्रार्थना करते हुए भी सावधानीपूर्वक स्पष्ट रखते हैं (श्लोक 20-28)।

5. समय ब्रह्माण्डीय न्याय के प्रकट होने में भी महत्त्व रखता है। सन्ध्या की आसन्न घड़ी तथा शुभ अभिजित काल के क्षीण होने पर ब्रह्मा की चिन्ता हमें स्मरण कराती है कि धर्म समय के भीतर कार्य करता है, उससे बाहर नहीं — यहाँ तक कि दिव्य हस्तक्षेप को भी किसी अन्ततः निश्चित क्षण पर नहीं अपितु उचित समय पर खोजी जाने वाली वस्तु के रूप में वर्णित किया गया है (श्लोक 25-27)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय के उस विषय को सम्भालने में एक शान्त गरिमा है जो सरलतापूर्वक मात्र तमाशा बन सकता था। हिरण्याक्ष को वास्तविक धमक तथा वास्तविक वाणी दी गई है — उनके ताने व्यंग्यचित्रित नहीं अपितु ऐसे किसी व्यक्ति के पूर्ण, कँपकँपा देने वाले आत्मविश्वास के साथ प्रस्तुत किए गए हैं जिसका कभी विरोध ही नहीं हुआ। तथा उस धमक के प्रति भगवान् का उत्तर तत्काल प्रयुक्त कोई अभिभावी बल नहीं है, अपितु छोटी, सोची-समझी प्राथमिकताओं का एक क्रम है: पहले पृथ्वी की सुरक्षा, संयम खोए बिना अपमान का वहन, केवल तभी सम-आघात से हिंसा का सामना जब पीछे हटना अब सम्भव न रहे, तथा तब भी, एक ऐसे विनोद के साथ आक्रमणकारी को सम्बोधित करना जो अपनी अन्तर्निहित शान्ति को कभी नहीं त्यागता। ब्रह्मा का विलम्ब से आना, व्याकुल तथा याचनापूर्ण, सम्पूर्ण प्रसंग में विनम्रता की एक और परत जोड़ता है — ब्रह्माण्ड के स्वयं वास्तुकार, प्रभावी रूप से यह स्वीकार करते हुए कि उनकी सृष्टि में मुक्त हुआ सङ्कट एक ऐसी वस्तु है जिसे वे उन्हीं भगवान् से याचना किए बिना समाधान नहीं कर सकते जिनके वराह-रूप की, क्षणों पूर्व, वे केवल प्रशंसा करने आए थे। यह एक ऐसा अध्याय है जो एक साथ अनेक स्तरों पर शक्ति के विषय में है: शक्ति का दुरुपयोग, शक्ति पर संयम, शक्ति का अन्ततः पूर्ण रूप से प्रयोग किए जाने की तैयारी — तथा यह कि कैसे ब्रह्माण्डीय व्यवस्था की सबसे शक्तिशाली सत्ताएँ भी, अन्ततः, स्वयं को कृपा की प्रतीक्षा करते हुए पाती हैं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, ऐसे किसी क्षण को देखें जब किसी के शब्द उस स्थिति की आवश्यकता से अधिक तीखे हों — एक ताना, एक उकसावा, आपको सन्तुलन से भटकाने के लिए बनाया गया कोई अपमान। उत्तर देने से पहले, यह पूछें कि इस अध्याय में भगवान् ने पहले किस बात पर ध्यान दिया: अपनी गरिमा पर नहीं, अपितु उस वस्तु की सुरक्षा पर जो उन्हें सौंपी गई थी। यही आपकी भी पहली चिन्ता बनने दें — अपने अभिमान की रक्षा करने से पहले उस वस्तु की रक्षा करें जो महत्त्वपूर्ण है। तथा यदि आप पाते हैं कि संयम पहले ही अपनी सीमा से परे परखा जा चुका है,

तो स्मरण रखें कि स्वयं भगवान् का अन्तिम उत्तर भी अन्धे क्रोध के बजाय संयम में लिपटा हुआ आया था। अपने दिन में लौटने से पहले, रुकें तथा शान्तिपूर्वक दोहराएँ: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” उस स्मरण को अगली बार जब उकसावा अनाहूत रूप से आए, आपको स्थिर करने दें, यह विश्वास करते हुए कि उचित समय पर की गई शान्त शक्ति वह प्राप्त करती है जो अकेला क्रोध कभी नहीं कर सकता।

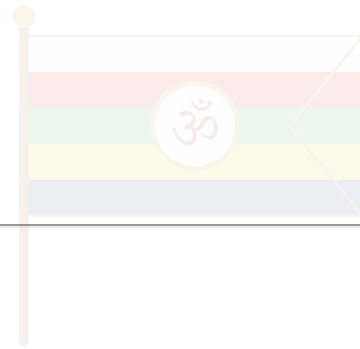
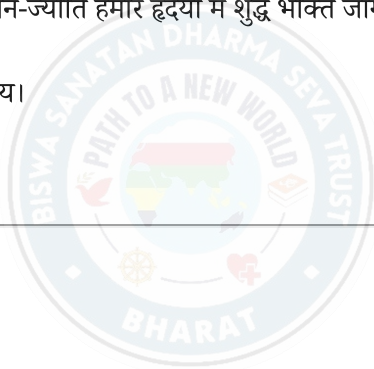
उपसंहार

तृतीय स्कन्ध का अष्टादश अध्याय हिरण्याक्ष के विषय में विदुर की कथा को उसके केन्द्रीय सामने की ओर ले जाता है — अभी उसके समाधान की ओर नहीं। मैत्रेय हमें एक दानव दिखाते हैं जो अपनी वरदान-दत्त शक्ति के शिखर पर है, प्रत्येक उस सलाह के प्रति तिरस्कारपूर्ण जो उसे रोक सकती थी, भगवान् का समुद्र पार पीछा करते हुए केवल यह पाने के लिए कि दिव्य वराह में उसे ऐसा प्रतिद्वन्द्वी मिला है जो ताने का उत्तर व्यंग्य से, उकसावे का उत्तर धैर्य से, तथा हिंसा का उत्तर, जब वह अन्ततः आती है, सम एवं मापित बल से देता है। अध्याय किसी मृत्यु के साथ नहीं अपितु एक प्रार्थना के साथ समाप्त होता है — स्वयं ब्रह्मा, ऋषियों से घिरे हुए, भगवान् से आग्रह करते हुए कि सन्ध्या की खतरनाक घड़ी आने से पहले ही इस उग्र तथा बढ़ते हुए द्वन्द्व को उसके नियत अन्त तक ले आएँ। यह एक ऐसा अध्याय है जो जान-बूझकर अपने सर्वोच्च तनाव के बिन्दु पर स्थगित है, उन्नीसवें अध्याय के उस वृत्तान्त की भूमिका तैयार करते हुए जो बताता है कि “हिरण्याक्ष की मृत्यु” नामक वह नियत अन्त अन्ततः कैसे घटित होता है।

श्रीमद्भागवत की दिव्य ज्ञान-ज्योति हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।



सन्दर्भ तथा श्रेय

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), तृतीय पुस्तक, अष्टादश अध्याय, पृष्ठ 215–217/218।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पंडित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र की आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान् पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं तथा उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक के साथ सम्बद्धता अथवा समर्थन का कोई संकेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-3-chapter-18-encounter-of-the-divine-boar-with-hiranyaksa-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

